त्रिविध श्रद्धा और त्रिविध त्याग

कहानी

चक्र

श्रीहरिः

त्रिविध श्रद्धा और त्रिविध त्याग

[कहानी]

'चक्र'

58

नम्र निवेदन

श्री'चक्र'जीकी कहानियोंका एक संग्रह 'दस महाव्रत' के नामसे प्रकाशित हो चुका है। यह दूसरा संग्रह है। इसमें तामसी, राजसी और सात्त्विक—तीन प्रकारकी 'श्रद्धा' एवं तामस, राजस और सात्त्विक—तीन प्रकारके 'त्याग' का स्वरूप वतलानेवाली छः कहानियाँ दी गयी हैं। प्रत्येक कहानीमें अपने-अपने विषयका ऐसा रोचक तथा हृदयग्राही वर्णन है कि जिसे पढ़नेपर सहज ही तामसी श्रद्धा और तामस त्यागके दोष, राजसी श्रद्धा और राजस त्यागके गुण-दोष एवं सात्त्विक श्रद्धा और सात्त्विक त्यागके सद्‌गुणोंकी पहचान हो जाती है और पाठकको सहज ही तामस-राजसका त्याग करके सात्त्विकी श्रद्धा एवं सात्त्विक त्यागको ग्रहण करनेकी पवित्र प्रेरणा मिलती है।

कहानियोंकी इस पुस्तिकाको पढ़कर पाठक स्वयं लाभ उठावें और इसका प्रचार-प्रसार करके लोकभावनाको सात्त्विक बनाकर सबका कल्याण करनेमें सहायता प्रदान करें—यही नम्र निवेदन है।

निवेदक—

प्रकाशक

श्रीहरिः

विषय-सूची

श्रीहरिः

त्रिविध श्रद्धा और त्रिविध त्याग

तामसी श्रद्धा *

'आपको वह मानता है। आप उसे समझा दीजिये। वे मेरे सम्मान्य हैं, पढ़े-लिखे हैं, समझदार हैं। उनके चरित्रपर कभी किसीने कोई शङ्का नहीं की है और सत्सङ्गमें उनकी रुचि है।' वे मेरे पास अपने पुत्रकी बात लेकर आये थे—'वह किसी औरकी बात नहीं सुनता।'

'बात क्या है?' उनके पुत्र सुशील हैं, पितृभक्त हैं। उनके-

---

* तामसधर्मों का श्रद्धा।

जैसा सच्चरित्र व्यक्ति मिलना कठिन है। वे कोई अयोग्य हठ करेंगे, यह बात सोचना भी कठिन था मेरे लिये।

'घरकी स्थिति ठीक नहीं है।' मैं जानता था कि आज-कल वे आर्थिक कष्टमें हैं। एक सम्भ्रान्त परिवार एक सीमासे अधिक अपना व्यय घटा नहीं पाता। पिता तथा घरके दूसरे सदस्य बहुत सम्पन्न जीवन व्यतीत करनेके अभ्यस्त हो चुके थे और अपना स्तर कम करना उनके लिये बहुत कठिन था। घरकी व्यवस्थाका भार था उनके ज्येष्ठ पुत्रपर और वे अत्यन्त सादगीके पक्ष-पाती थे।

'बात तो आपकी ठीक है।' मैंने नम्रतापूर्वक निवेदन किया। 'किंतु भाई श्री⋯⋯कोई आपको कष्ट देनेवाली बात कहेंगे या आपको अप्रिय लगनेवाला कोई कार्य करेंगे, यह आशङ्का मुझे नहीं है।'

'ऐसी कोई बात नहीं है।' वे पुत्रकी प्रशंसा करने लगे और कोई भी पिता अपने ऐसे सच्चरित्र, उदार, विनयी एवं विद्वान् पुत्र-पर गर्व कर सकता है। 'वह मेरे सामने तो मुख ही नहीं खोलता। स्वयं टाट-जैसे मोटे कपड़े पहिनता है; घरमें जिसे जो चाहिये, वह लानेमें कभी इधर-उधर नहीं करता। उसमें न कोई हठ है और न कोई दूसरा दुर्गुण। वह तो गायके समान सीधा है।'

'तब मैं उन्हें क्या समझा दूँ?' मुझे आश्चर्य भी हुआ और कुतूहल भी।

'देखिये, तीन कन्याएँ हैं और हमारे समाजमें कन्याके विवाहका जो व्यय है, उसे आप जानते ही हैं।' वे बोले। 'दूसरे भी व्यय बड़ी कठिनाईसे चल रहे हैं। ऋण हो गया है अपने ऊपर, यह आपसे कहनेमें कोई संकोचकी बात तो है नहीं।'

'मैं बहुत कुछ परिचित हूँ परिस्थितिसे।' इतनी घनिष्ठता हो गयी थी उनसे कि उनके बतानेसे बहुत पूर्व मुझे इस स्थितिका आभास हो चुका था।

'उसे इन सबकी चिन्ता ही नहीं है।' यही बात कहने वे आये थे, यह अब स्पष्ट हो गया।

'चिन्ता तो उन्हें है, किंतु चिन्ता करके वे कर क्या सकते हैं?' मैंने पूछा। 'अपने प्रयत्नमें तो वे कोई त्रुटि करते नहीं।'

'आजकल तो कपड़ेके व्यवसायमें लक्ष्मीकी वर्षा हो रही है!' अब वे खुल गये। 'वह चाहे तो लाख-दो-लाख छः महीनेमें बन जायँगे। जो काम सभी कर रहे हैं, उसमें क्या अनुचित रहा है? व्यापारमें तो झूठ भी बोलना पड़ता है, कुछ इधर-उधर भी करना पड़ता है। आप जानते ही हैं कि राजा हरिश्चन्द्र बननेसे व्यापार नहीं चल सकता। आज इतने कर सरकारने लगा दिये हैं कि कर-विभागको बनावटी बहीखाता न दिखाया जाय तो घरसे ही कुछ देना पड़े।'

'चोरबाजारी, छल एवं असत्यके भाई श्री·······कितने विरुद्ध हैं!' मैंने दबे स्वरमें कहा। 'उनकी ईमानदारी तथा सत्यप्रियताकी तो पूरा नगर प्रशंसा करता है।'

'इस प्रशंसासे तो पेट भरता नहीं।' वे तनिक उत्तेजित स्वरमें बोले। 'बड़े-बड़े आदर्श पुरुष भी आज यही करते अथवा कराते हैं; किंतु वह है कि इस विषयमें मेरी कुछ सुनता ही नहीं। कुछ कहो, कितना भी बिगड़ो—गूँगा बना रहेगा। आप उसे समझा सकेंगे, इस आशासे आपके पास आया हूँ।'

'मैं प्रयत्न करूँगा!' वे मेरे सम्मान्य हैं। उनसे विवाद करनेका मैं साहस नहीं कर सकता। उन्होंने उदाहरणके रूपमें ऐसे श्रद्धेय पुरुषोंके नाम लिये थे—उस बातने मुझे स्तब्ध कर दिया था। उन्हें किसी प्रकार आश्वासन देकर विदा करनेके अतिरिक्त मेरे पास और उपाय भी क्या था।

× × ×

'भाई! आपके पिताजी आये थे मेरे पास।' मिलनेपर मैंने भाई श्री········से निवेदन किया। 'आप उनकी कुछ बातें नहीं मानते। वे चाहते हैं कि मैं आपको समझाऊँ, किंतु आपको समझाने-जैसी योग्यता मुझमें है, यह मैं देख न रहा हूँ। अब आप जैसा कहें।'

'सबके भरण-पोषणका भार विश्वके संचालकपर है। वह जगन्नियन्ता मङ्गलमय है, सर्वज्ञ है, दयामय है, हमारा सुहृद् है और सत्यसंकल्प है।' वे पर्याप्त गम्भीर होकर बोल रहे थे। 'मैंने तो आपसे ही सुना है, ग्रन्थोंमें भी यही सब लिखा है, सत्पुरुष भी यही कहते हैं। इसलिये मैंने इसपर विश्वास कर लिया है।'

'आपका विश्वास सत्य नहीं है, यह कहनेवाला तो कोई अनीश्वरवादी ही हो सकता है।' मेरे स्थानपर आप होते तो आपके समीप भी यही उत्तर था।

'सत्य-संकल्प भगवान्‌का संकल्प अन्यथा नहीं किया जा सकता—मनुष्यके किसी प्रयत्नसे नहीं।' उन्होंने उसी गम्भीरतासे कहा। 'हमारे मङ्गलके लिये उनका संकल्प होगा ही।'

'पुरुषार्थको मैं प्रधान मानता हूँ।' मैंने एक मार्ग निकाला। 'कर्म करनेमें मनुष्यकी स्वतन्त्रता भगवान्‌ने स्वयं गीतामें स्वीकार की है।'

'आप ही मुझे बहकाना चाहेंगे तो सहायता कौन देगा।' उनका स्वर उलाहनाभरा था। 'कर्मका फल पानेमें तो मनुष्य स्वतन्त्र है नहीं। 'बीज-वृक्षन्याय' कर्मवादका प्रख्यात है। इस वर्ष बोयी फसलका फल आगे और पहली फसलका फल अब। इसी तरह पूर्वके कर्मोंके उस अंशका जो प्रारब्धके हेतु हैं, इस जन्ममें फल भोगना है और इस जन्मके कर्मोंका फल आगामी जन्मोंमें।'

'आपसे विवाद करके जीता नहीं जा सकता।' मैंने हँसकर प्रसङ्ग टालनेका प्रयत्न किया।

'बहुत-से लोग आज घूसखोरी, चोरबाजारी या छल-कपटसे बहुत अधिक धन कमा रहे हैं; यही बात हमें प्रलोभित करती है। किंतु उन्हें जो सम्पत्ति मिल रही है, वह उनके पूर्व पुण्यका फल है।' उन्होंने उसी गम्भीरतासे कहा। 'बहुतसे ऐसे लोग भी तो हैं—सम्भवतः वे पहिलोंसे अधिक हैं—जो झूठ-कपट, चोरबाजारी,

चोरी या दूसरे सभी अधर्म करनेमें कुछ उठा नहीं रख रहे हैं, किंतु बिल्कुल कंगाल बने हैं। भरपेट रोटीकी भी ठीक व्यवस्था वे नहीं कर पाते।'

'बात आप सवासोलह आने ठीक कह रहे हैं।' उस समय तक सरकारने सौ पैसेका रुपया घोषित नहीं किया था और न आनोंकी सत्ता समाप्त करनेका निर्णय किया था, अन्यथा यह लोकोक्ति किसी दूसरे रूपमें प्रयुक्त होती।

'पिताजीकी आज्ञा मान लूँ—इसका अर्थ तो हुआ कि मैं स्वयं उस आज्ञासे जो अधर्म करूँगा, उसके प्रेरक होनेके कारण मुख्य पापके भागी वे होंगे।' उन्होंने बड़े भावभरे स्वरमें कहा। 'उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेसे कोई पाप होता भी है तो मुझे होता है; उसका फल मैं भोग लूँगा। किंतु मेरे साथ वे भी पापके भागी बनें, ऐसा काम करनेको आप मुझे नहीं कह सकते।'

'मैं आपको कुछ कह सकूँ, ऐसा मैं स्वयं नहीं हूँ।' वे बहुत संकुचित होते हैं मेरी ऐसी बातोंसे; किंतु बात तो यही सच है। हमलोगोंकी उस दिनकी चर्चा यहीं समाप्त हो गयी। शाम हो रही थी और वे लाख काम छोड़कर संध्याके समय ही संध्या करनेके अभ्यासी हैं।

× × ×

'आप भगवान्पर तो विश्वास करते हैं?'

'करता तो हूँ।'

'पुनर्जन्मपर भी विश्वास करते हैं ?'

'करता हूँ ।'

'प्रारब्धपर भी ?'

'जी; किंतु आज आप यह सब क्यों पूछ रहे हैं ?' उनका प्रश्न स्वाभाविक था । वे मेरे सम्मान्य हैं । उनके घर मैं स्वयं गया, इसमें तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं; किंतु उनसे मिलते ही मैं ऐसे अटपटे प्रश्न करूँ—यह धृष्टता ही तो है । वैसे उनका मुझपर इतना स्नेह है कि मेरी धृष्टतासे वे कभी रुष्ट नहीं होते । उनके इस स्नेहने ही मुझे इतना धृष्ट बनाया भी है ।

'मान लीजिये कि संसारके सब लोग ईश्वरको न मानें ।'

'भले न मानें । कलियुगमें यह असम्भव नहीं है ।' वे बोले । 'किंतु विश्वके समस्त उलूक सूर्यकी सत्ता नहीं मानते तो क्या सूर्यकी सत्ता असिद्ध होती है ? ईश्वर सत्य हैं, अतः हैं । किसीकी मान्यता क्या कर सकती है इसमें ।'

'और यदि विश्वका जनमत प्रारब्धको न माने ?' मैंने दूसरा प्रश्न कर दिया ।

'सो तो आज भी नहीं मानता ।' वे हँस पड़े । 'विश्वमें ईसाई, मुसलमान आदि अधिक हैं । अनीश्वरवादी भी पर्याप्त हैं । हिंदू ही पुनर्जन्म तथा प्रारब्ध मानते हैं और विश्वमें उनकी जन-संख्या कम है । उनमें भी अब नवशिक्षितोंमें अधिक लोग प्रारब्धपर विश्वास नहीं रखते, किंतु किसीकी मान्यतासे सत्य बदला नहीं करता । प्रारब्धका सिद्धान्त तो एक सत्य है ।'

'कुछ लोग—बहुत गिने-चुने लोग हैं, जो भगवान्पर तथा प्रारब्धपर श्रद्धा करते हैं।' मैंने कहा। 'जो लोग इनको मानते भी हैं उनमें भी अधिक ऐसे ही हैं, जो केवल मुखसे इन्हें मानते हैं। व्यवहारमें तो वे भगवान् या प्रारब्धकी अपेक्षा पापपर—असत्य, छल-कपट, बेईमानी आदिपर श्रद्धा करते हैं।'

'इसीका नाम तो अज्ञान है।' वे खेदपूर्वक बोले। 'मायामोहित मनुष्य नहीं समझता कि पापपर आस्था करके वह केवल अपने पतनका मार्ग बना रहा है।'

'मैंने भाई श्री········से आपके आज्ञानुसार बात की थी।' अब मैं अपने मूल विषयपर आ गया। 'वे कहते हैं कि मैं पापकी अपेक्षा प्रारब्धपर तथा भगवान्के विधानपर अधिक श्रद्धा करता हूँ।'

'वह ठीक कहता है।' वे अब समझे कि मैं आज उनसे अटपटे प्रश्न क्यों कर रहा था। किंतु वे विद्वान् हैं, समझदार हैं, सत्सङ्गी हैं। ऐसा व्यक्ति दुराग्रही नहीं हुआ करता। बड़ी सरलता-पूर्वक वे बोले—'मेरे चित्तकी दुर्बलता है कि मैं उसे बार-बार दूसरोंके समान अनुचित मार्ग अपनानेको कहता हूँ। आज आपने मेरी भूल मुझे सुझा दी है। अब मैं उससे कभी कुछ नहीं कहूँगा।'

'जो सत्य एवं ईमानदारीपर स्थिर रहते हैं, वे कष्ट ही पाते हैं।' यह लोकधारणा मिथ्या सिद्ध हो गयी। थोड़े ही समयमें कुछ ऐसे कार्य उन्हें अकस्मात् प्राप्त हो गये, जिनसे उनका आर्थिक संकट तो दूर हुआ ही, वे पर्याप्त सम्पन्न गिने जाने लगे।

राजसी श्रद्धा*

'भारतकी जनसंख्या बराबर बढ़ती जा रही है। इस बढ़ती हुई जनसंख्याको भोजन देनेकी समस्या कम विकट नहीं है।' मैं यात्रा कर रहा था रेलके द्वितीय श्रेणीके डिब्बेमें। उसमें एक स्वच्छ खद्दरधारी पुरुष सामनेकी बैठकपर विराजमान थे और बड़े उत्साहसे वे अपने पास बैठे एक दूसरे सज्जनको समझा रहे थे कि अन्नके उत्पादनके लिये सरकारकी क्या-क्या योजना है।

'आप बुरा न मानें तो मैं एक घटना सुनाऊँ।' एक गैरिक वस्त्रधारी संन्यासी बीचमें बोल उठे।

'इसमें बुरा माननेकी तो कोई बात नहीं।' उन खद्दरधारी महोदयको कुछ बुरा अवश्य लगा; क्योंकि नहर-बाँध-योजनासे लेकर चकबंदीतककी सब सरकारी योजनाओं एवं उनके लाभ वे समझा देना चाहते थे; किंतु उनके श्रोताको उनके व्याख्यानकी अपेक्षा साधुसे घटना सुनना अधिक आकर्षक जान पड़ा और वे उन संन्यासी महोदयके अभिमुख हो गये।

यात्रा लंबी थी। हमारे डिब्बेमें कोई खड़ा नहीं था और न कोई लेट लगानेको ही स्थान पा सका था। इस प्रकार बैठे-बैठे कई घंटे व्यतीत करनेका कुछ अच्छा साधन नहीं था। जो पुस्तकें तथा समाचारपत्र लिये गये थे, वे पढ़े जा चुके थे। अब और

* कर्मश्रद्धा तु राजसी।

पढ़नेकी इच्छा नहीं हो रही थी। सब संन्यासीजीकी घटना सुननेको उत्सुक हो गये।

'हम सब सुनना चाहते हैं।' एक साथ कई स्वर आये। इसका अर्थ था कि कुछ उच्चस्वरसे बात कही जाय।

'घटना मेरी नहीं है।' संन्यासी महोदय बोले। 'एक बार मुझे एक बहुत बूढ़े जटाधारी वैष्णव साधु मिले थे। नासिक-कुम्भके अवसरपर उन्होंने यह घटना मुझे सुनायी थी।'

'वे कहते थे कि अपनी युवावस्थामें एक बार वे बद्रीनाथकी यात्रा करने गये थे। लौटते समय पाण्डुकेश्वरसे भुशुण्डिकुण्डकी ओर चले गये और कोई मार्गदर्शक न होनेसे उधर पहाड़ोंमें भटक गये।' संन्यासीजीने एक बार सबकी ओर देखा—'चार दिन भटकते रह गये पर्वतोंमें। वहीं उन्हें महर्षि लोमशके दर्शन हुए।'

अब सब लोग बहुत उत्सुक हो गये थे। कुछ लोग कुछ झुक आये थे और एक सज्जन तो अपने स्थानसे उठकर संन्यासीजीके पास पड़ी हुई सन्दूकपर ही आ बैठे।

'उन साधुने सत्सङ्गकी बात तथा अपने अकस्मात् एक गुफामें शयनकी बात सुनायी। यह भी सुनाया कि उन्हें महर्षिने एक दिव्य कन्द दिया, जिसे भोजन कर लेनेसे भूख तो गयी ही, थकावट भी सर्वथा चली गयी।

'सबसे मुख्य बात जो साधुने बतायी'—एक क्षण संन्यासीजी रुके—'उन्होंने महर्षि लोमशसे पूछा था कि पृथ्वीपर यह जो कीड़े-

मकोड़ोंके समान मनुष्य बढ़ते जा रहे हैं, इनके भोजनकी क्या व्यवस्था होगी ?'

अब हम सबमें जो उत्सुकता जाग्रत् हुई, वह मत पूछिये। वे खद्दरधारी सज्जन, जो अबतक कुछ खीझे हुए-से चुपचाप बैठे थे अपना समाचारपत्र उलटते, उन्होंने भी समाचारपत्र एक ओर रख दिया था।

'आप सब जानते ही हैं कि महर्षि लोमश अमर हैं।' संन्यासीजी बोले। 'प्रलयमें भी उनका नाश नहीं होता। उन्होंने उन वैष्णव साधुको किसी प्राचीन कल्पकी एक बात सुना दी। अब महर्षिकी बात आप सुन लें।'

× × ×

समुद्रके मध्यमें एक महाद्वीप था। बड़े बुद्धिमान् एवं उद्योगशील पुरुष थे वहाँके। उन बुद्धिमान् लोगोंकी प्रतिभाने जो चमत्कार दिखलाये थे, आजके मनुष्य उसका अभी स्वप्न भी नहीं देख पाते हैं। वे मृत्युपर विजय तो नहीं पा सके थे; किंतु रोगों एवं बुढ़ापेको उन्होंने अपने महाद्वीपसे सदाके लिये विदा कर दिया था। इसका फल यह हुआ कि मृत्यु संख्या बहुत थोड़ी रह गयी। महाद्वीपकी जनसंख्या प्रति पाँचवें वर्ष दुगुनी होती चली गयी।

'बाप रे!' वे खद्दरधारी महोदय चौंके।

'महाद्वीपमें वृक्ष बचे ही नहीं, केवल भवनोंकी छतों एवं खिड़कियोंमें लगाये कुछ पुष्प-लताओंके पौधे रह गये। महाद्वीपका एक कौतुकालय था और वहीं पशु-पक्षी देखे जा सकते थे। पूरे

महाद्वीपमें गगनचुम्बी भवन तथा स्नानके लिये आवश्यक जलाशय रह गये थे। यानोंके संचालनकी व्यवस्था उन बुद्धिमान् लोगोंने भूमिके नीचे कर दी थी और उनके आकाशचारी यान भवनोंकी छतोंपर उतरते तथा वहींसे उड़ते थे। भूमिके ऊपर बहुत कम पथ रह गये थे। केवल इसलिये कि उनसे समीपके भू-गर्भमें स्थित किसी यानको पानेके लिये जाया जा सके।'

'वे भोजन क्या करते थे?' उन खद्दरधारी महोदयने पूछा।

'मैं महर्षि लोमशकी कही बात सुना रहा हूँ।' संन्यासीजी बोले। 'आप कुछ क्षण धैर्य रक्खें।' और वे फिर महर्षिकी बात सुनाने लगे—

'वे इस प्रकारके वस्त्र पहनते थे जो न फटते थे, न मैले होते थे। केवल रुचिके कारण वे वस्त्रोंको बदल लिया करते थे। वैसे उनके वस्त्र विभिन्न रंगोंके और उत्तम थे।

'उन्होंने अद्भुत यन्त्र लगा रक्खे थे। महाद्वीपका एक भाग विभिन्न प्रकारके यन्त्रोंसे भरा था। उनके यन्त्र दूध, दही, घी, फल, मेवे और वे सब आवश्यक वस्तुएँ बना देते थे, जिनकी उन लोगोंको आवश्यकता थी।

'उन अद्भुत मनुष्योंने कुछ ऐसी व्यवस्था कर ली थी कि उनके यहाँ न आँधी आ सकती थी, न प्रबल वर्षा होती थी। वे जब चाहते थे—मेघ उत्पन्न करके रिमझिम वर्षा करा लेते थे। शीत कितना पड़ना चाहिये और उष्णता कितनी होगी, यह उनकी इच्छापर निर्भर था।'

'उनके यन्त्रोंके लिये कच्चा माल कहाँसे आता था ?' खद्दरधारी महोदयने पूछा।

'आपने फिर बीचमें बाधा दी है।' संन्यासीजी तनिक असंतुष्ट हुए। 'महर्षिने जो बताया है—मैंने साधुसे सुना और वह बता रहा हूँ। किसी प्रश्नका उत्तर मेरे पास नहीं है।'

'आप वही बतावें!' दूसरे लोगोंने विनय की।

'उन लोगोंकी कर्ममें प्रबल निष्ठा थी। उद्योगको ही वे जीवनका सर्वस्व मानते थे। उद्योग, अथक उद्योग इसकी परम्परा बन गयी थी उनमें। परिश्रम करनेमें उन्हें सुख मिलता था। उनके यहाँ 'आलस्य' शब्द ही नहीं था।

'अनन्त समुद्र उनका उत्पादन-क्षेत्र था। उनके यान समुद्रके जलके भीतर, सतहपर एवं आकाशमें अबाध चलते थे। समुद्रमें उनके गहरे डूबनेवाले यान घूमते रहते थे और वहाँ उनकी कृषि होती थी—विचित्र प्रकारकी कृषि। इन समुद्री पौधों एवं प्राणियोंके उत्पादन-पालनसे उनके यन्त्रोंके लिये सामग्री उपलब्ध होती थी और उस सामग्रीसे वे यन्त्र दूध, घी, वस्त्र, फल, मेवे, अन्न एवं धातु—सभी उत्पन्न किया करते थे।

'उन लोगोंकी जनसंख्या बढ़ती जा रही थी। महाद्वीप उनके लिये छोटा होता जा रहा था; किंतु उनका उत्साह अदम्य था। उनके यान अब चन्द्र, मङ्गल, बुध आदि ग्रहोंमें पहुँचने लगे थे और उन्होंने अन्वेषण प्रारम्भ कर दिया था उपनिवेश बनाने योग्य भूमिका।

'उन लोगोंकी यह चरमोन्नतिका वर्णन है।' संन्यासीजीने फिर तनिक विश्राम लिया।

× × ×

'उनके यहाँ साधु-संन्यासी निश्चय नहीं रहे होंगे !' खद्दरधारी महोदयने व्यङ्ग किया ।

'एकदम नहीं !' संन्यासीजीने बिना अप्रतिभ हुए उत्तर दिया । 'वे कर्मको ही आराध्य माननेवाले लोग थे तो उनके यहाँ कर्मत्यागी कोई हो ही कैसे सकता था । वैसे महर्षि लोमशने बताया था कि उनके यहाँ भी उपासना थी । वे लोग प्रायः समुद्रगर्भमें निहित रत्नोंकी प्राप्तिके लिये अपने यन्त्रोंकी अपेक्षा अपनी उपासनापर अधिक निर्भर करते थे । उनके उपास्य थे—यक्ष । यक्षिणीसिद्ध अनेक थे उस महाद्वीपमें । उनकी यह सिद्धि उनके उद्योगमें बहुत सहायक होती थी ।'

'वे लोग सम्भवतः पृथ्वी छोड़कर किसी दूसरे लोकमें जा बसे ?' एक सज्जनने पूछ लिया ।

'उन लोगोंका हुआ क्या ?' यह प्रश्न हम सभीके मनमें था ।

'महर्षि लोमशने बताया—' संन्यासीजी कह रहे थे कि 'कर्मकी प्रवृत्ति राजसी प्रवृत्ति है । रजोगुण प्रारम्भमें बहुत सुखद जान पड़ता है, वैभवके बहुत स्वप्न दिखलाता है । यश-ऐश्वर्यका लोभ न हो तो प्रवृत्तिमें प्राणी क्यों पड़े; किंतु रजोगुणका अन्तिम परिणाम है दुःख एवं विनाश 'परिणामे विषमिव ।'

'तो वे बुद्धिमान् लोग भी यादवोंकी भाँति परस्पर लड़ मरे ।' एक वृद्ध पण्डितजीने पूछा ।

महर्षिने तो बताया था कि 'उन्होंने ऐसी व्यवस्था कर ली

थी कि उनके समाजमें न युद्ध सम्भव रहा था और न डकैती, चोरी आदि अपराध ही।

'तब तो न वे दुखी हो सके, न उनका विनाश ही सम्भव दीखता!' खद्दरधारी महोदय बोले।

'किंतु हुआ यही।' संन्यासीजीने बताया। 'महर्षिका कहना था कि एक रात्रिमें उस महाद्वीपके उस भागमें, जो महाद्वीपका यन्त्रालय था, पृथ्वी फट गयी। एक ज्वालामुखी फूट पड़ा अचानक और यन्त्रोंको जिस प्रकाण्ड शक्तिसे वे बुद्धिमान् मनुष्य चलाते थे, उस शक्तिके भण्डारमें विस्फोट हो गया। दूसरे दिन जब सूर्योदय हुआ, उस महाद्वीपके ऊपर समुद्र हिलोरें ले रहा था। पूरा महाद्वीप उस विस्फोटमें विलुप्त हो गया था।'

'ओह!' हम सभी धक्-से रह गये। एक बड़ा स्टेशन समीप आ गया था। गाड़ीकी गति कम होने लगी थी। संन्यासीजी अपने स्थानसे उठे। उन्होंने अपना बिस्तर ऊपरसे उतारकर नीचे रक्खा और कमण्डलु हाथमें ले लिया। उन्हें यहीं उतरना था।

'उन वैष्णव साधुने बताया था कि इतनी ही कथा सुनाकर महर्षि लोमश पर्वतोंमें कहीं चले गये थे और फिर ढूँढ़नेपर भी उन्हें मिले नहीं।' संन्यासीजीने ट्रेन रुकते-रुकते कहा—'अतः मुझे भी और कुछ ज्ञात नहीं।'

वे वहीं उतर गये। उनकी सुनायी घटना सत्य है या कल्पित, इस सम्बन्धमें डिब्बेमें बैठे लोगोंके विभिन्न मत थे। आप अपना मत स्वयं स्थिर करें।

सात्त्विकी श्रद्धा

'मैं एक प्रार्थना करने आया हूँ !' जिन्हें लोग 'सरकार' 'अन्नदाता' कहते थकते नहीं थे, वे नरेश स्वयं आये थे एक कंगाल ब्राह्मणकी झोंपड़ीपर । उन्हें भी—जिनकी आज्ञा ही उनके राज्यमें कानून थी और जिनकी इच्छा किसीको भी उजाड़-बसा सकती थी, उन्हें उस मुट्ठीभर हड्डीके दुर्बल ब्राह्मणसे अपनी बात कहनेमें भय लगता था ।

'क्या कहना है तुम्हें !' न सरकार, न अन्नदाता—वह ब्राह्मण इस प्रकार बोल रहा था जैसे नरेश वह है और जो नरेश उसके सामने खड़े हैं, वे उसके भिक्षुक अथवा सेवक हैं । उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ था, जब नरेश उसकी झोंपड़ीपर पधारे थे । उसने उनके स्वागत-सत्कारकी कोई व्यस्तता नहीं दिखलायी थी ।

त्यागी, स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मण देवताओंद्वारा भी वन्दनीय है । कोई उसके यहाँ आता है, उसे प्रणाम करता है तो उसपर कोई कृपा नहीं करता । वह कृपा करता भी है तो अपने आपपर करता है; क्योंकि उस तपस्वीके दर्शन एवं अभिवादनसे वह स्वयं पवित्र होता है । उसके अशुभ—अमङ्गल नष्ट होते हैं ।

नरेश आये, उन्होंने चरणोंमें मस्तक रक्खा । यह तो उन्हें करना ही चाहिये था । ब्राह्मणने आशीर्वाद दिया—'कल्याणमस्तु !'

सचमुच नरेशके लिये ही यह सौभाग्यकी बात थी कि उन्हें दर्शन हुआ था इन विप्रदेवका । प्रातः सूर्योदयके समय संध्या-

हवनादि करके जो ग्रामसे मीलभर वाहर चला जाय और लौटे भी दोपहरमें तो फिर स्नान-संध्यामें लगे। भोजन किया और ग्रामसे वाहर। लौटेंगे तो सायंकाल और उस समय भी नित्यकृत्यसे पहर रात गये उन्हें अवकाश मिलेगा। ऐसे किसी दिन नरेश आ गये होते तो दर्शन भी नहीं होना था। यह तो आज पुराण-पाठके अनध्यायका दिन है, इससे वे घरपर मिल गये।

'मेरी बहुत दिनोंकी लालसा है कि आपके श्रीमुखसे श्रीमद्भागवत सुनता!' नरेशने दोनों हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे प्रार्थना की। 'राजभवन श्रीचरणोंसे पवित्र हो जायगा। आप जब सुविधा देखें और जिन विधियोंकी आज्ञा करें.......।'

'अच्छा बहुत हो चुका!' ब्राह्मणके तेजसे उद्दीप्त मुखपर रोषकी किंचित् झलक आयी। 'तुम मेरे यहाँ आये हो, इसलिये मैं तुम्हें शाप नहीं देता। तुम्हारा इतना साहस हो गया है कि तुम त्रिभुवनके स्वामी भगवान् शंकरके कथावाचकसे कथा सुनानेको कहो! सुनो, चन्द्रमौलिको छोड़कर न मैंने किसीको कथा सुनायी है, न सुना सकता हूँ।'

'मुझे क्षमा करें!' नरेशके पैर काँप रहे थे। जिसकी भौंहोंपर बल पड़नेपर लोगोंका रक्त सूख जाता था, उसका मुख सूख चुका था। उससे ठीक रीतिसे बोला नहीं जा रहा था— 'मुझसे भूल हुई।'

'अच्छा जा!' ब्राह्मण तो क्षमाका साकार रूप है। उसका रोष कितने क्षणका।

'मैं कृतार्थ हो जाता !' नरेशने हाथ जोड़कर प्रार्थना की। 'यदि कोई सेवा प्राप्त हो जाती !'

'अन्नपूर्णाके आराध्यका सेवक हूँ मैं !' ब्राह्मण हँसे। 'तूने कंगाल समझा है मुझे ? चल—झटपट चला जा यहाँसे !'

नरेशने बहुतोंको अपने दरबारसे निकलवाया था—राज्यसे भी निकलवाया होगा, किंतु एक दरिद्र ब्राह्मणने उन्हें आज अपने द्वारपरसे झिड़ककर भगा दिया था और चले जानेके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं था उनके पास।

× × ×

शहरमें पं० श्रीरामप्रकाशजीको पूछना नहीं पड़ता था। वे न सबसे बड़े धनी थे, न कोई अफसर या लोकनेता; किंतु शहरका बच्चा-बच्चा उन्हें जानता था। वे सबके परम श्रद्धा-भाजन थे।

वैसे पण्डित रामप्रकाशजीको अपने घरका ही पता नहीं रहता था, बस्तीका तो क्या रहेगा। वे बहुत कम लोगोंको पहचानते थे। सच बात तो यह कि उन्होंने जिनको पहचान लिया था, उन्हें पहचान लेनेपर और किसीसे जान-पहचान करना आवश्यक नहीं रह जाता।

आजसे तीस वर्ष पूर्वकी बात है। पण्डितजीके पिताका देहावसान हो चुका था, उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त हुई और पण्डितजीको उदरपूर्तिकी दैनिक क्रियाकी चिन्ता करनी पड़ी। ब्राह्मण पूजा-पाठ करायेगा, कथा सुनायेगा, दूसरा भी कुछ कार्य वह कर सकता है, यह बात पण्डितजीकी समझमें आनेसे रही।

कलियुगमें वे उत्पन्न भले हुए हों, सत्ययुगके सीधे सरल ब्राह्मण थे।

पूजा-पाठ तो किसीको कराना हो और वह बुलावे तब किया जाय। पण्डितजीने श्रीमद्भागवतकी पोथी उठायी और यजमान ढूँढ़ने निकले।

'आजकल तो अवकाश नहीं है। ये व्यापारके दो महीने मुख्य हैं। आप फिर कभी पधारें।'

'इस समय तो हाथ खुले नहीं हैं। लड़कीका विवाह करना है। अगले वर्ष आप पधारें तो सोचा जायगा!'

पण्डितजी जहाँ कहीं गये—वे उन सब सम्पन्न लोगोंके पास गये, जिनकी उदारता उन्होंने सुनी थी और जिनसे उन्होंने कुछ आशा कर रक्खी थी; किंतु कोई व्यापारमें उलझा था, कोई मुकदमेमें। किसीको बेटीका ब्याह करना था, किसीको मकान बनवाना था। किसीको भी श्रीमद्भागवत सुननेकी सुविधा नहीं मिली उस दिन।

पूरे बारह कोस भटककर शामको लौट रहे थे पण्डित रामप्रकाशजी। दिनभरके भूखे-प्यासे, चार-पाँच सेरकी पोथीका बस्ता बगलमें दबाये, हताश! यजमानोंको तो दो-तीन महीने या वर्षभर अवकाश नहीं था; किंतु उनका और उनकी पत्नीका उदर क्या इतना अवकाश देगा? पेटके गड्ढेमें तो नित्य अन्नकी आहुति देनी ही पड़ेगी।

'मृत्यु किसी क्षण आ सकती है। परलोककी तैयारी हजार काम छोड़कर करनी चाहिये।' यजमानोंको अवकाश नहीं था

यह समझनेका और भूखे ब्राह्मणके पास इस लोकमें दो रोटीक
उपाय नहीं दीखता था। भिक्षा वह माँग नहीं सकता। इससे त
भूखों मर जाना उसे पसंद आयेगा।

'बाबा! आपको तो अवकाश है!' शहरसे लगभग एक मील
बाहर निर्जनमें एक शिव-मन्दिर था। पण्डित रामप्रकाशजी लगभ
संध्याको सर्वत्रसे निराश लौट रहे थे। मन्दिरमें वे दर्शन करने
गये और प्रणाम करके पृथ्वीसे मस्तक उठाते ही उनको कुछ
सूझ गया—'आप सुनिये मेरी कथा। आप मेरे यजमान और मैं
आपका कथावाचक।'

उन्होंने स्वयं मन्दिर स्वच्छ किया। एक ओर आसन लगाय
और पोथी सम्मुख रखकर कथा बाँचने बैठ गये। जैसे कोई
कथावाचक सैकड़ोंकी भीड़को कथा सुना रहा हो—पूरे उच्च स्वरसे,
भली प्रकार दृष्टान्तादि देकर, समझाकर अपने योग्यतानुसार पूरी
व्याख्या करते हुए पण्डितजी कथा सुनाने लगे।

'अल्पारम्भा क्षेमकरा' उस दिन संध्या हो रही थी, अतः एक
श्लोकका मङ्गलाचरण करके ही कथा समाप्त हो गयी; किंतु दूसरे
दिन सबेरे ही पण्डितजी वहाँ आ पहुँचे पोथी लेकर। तभीसे
अबतक वे उसी क्रमसे कथा सुनाते आ रहे हैं उन उमाकान्त
आशुतोषको।

× × ×

'आज घरमें केवल इस समयके लिये भोजन-सामग्री है!'
बेचारी ब्राह्मणी क्या करे, उसे कभी-कभी पण्डितजीको, जब वे

अपनी पोथी लेकर मन्दिर जानेको उद्यत होते हैं, यह सूचना देनी ही पड़ती है।

'अच्छा, आज बाबासे कहूँगा।' पण्डितजीका एक बँधा उत्तर है।

उस दिन कथा समाप्त होनेपर पण्डितजी जब पोथी समेट लेंगे तो भगवान् शंकरको प्रणाम करके कहेंगे—'बाबा! ब्राह्मणको कथा सुनाते इधर कुछ दिन हो गये। अब घरमें कुछ भोजन नहीं रहा।'

पण्डितजी इतनी प्रार्थना करके निश्चिन्त हो जाते हैं सदा। उन्होंने घर आकर पत्नीसे कभी नहीं पूछा कि सायंकालकी क्या व्यवस्था है अथवा कलका प्रबन्ध कैसे होगा? ब्राह्मणी कैसे घरकी व्यवस्था करती है, क्या पदार्थ कहाँसे आता है, इसका उन्हें कुछ पता नहीं। इन बातोंको जाननेकी इच्छा उन्हें कभी नहीं हुई और उनकी साध्वी स्त्रीने पतिको यह सब सुनाकर प्रपञ्चमें ले आना कभी उचित भी नहीं माना।

पण्डितजी अपने त्याग एवं भजन-निष्ठाके कारण पूरी बस्ती ही नहीं, दूर-दूर तकके लोगोंके श्रद्धाभाजन थे। अतएव लोग उनके यहाँ अपने उपहार पहुँचाते ही रहते थे। लोग समझते थे कि पण्डितजीके सामने कुछ ले जानेपर सम्भव है, वे स्वीकार न करें, अतः उनकी अनुपस्थितिमें उनकी पत्नीको ही वे अपनी भेंटें चुपचाप दे जाया करते थे।

घरका काम इस प्रकार चल रहा था। एक दिन ब्राह्मणीने

रात्रिको पण्डितजीसे नवीन ही प्रार्थना की—'कन्या बड़ी हो रही है ! उसके विवाहकी चिन्ता तो आपको ही करनी पड़ेगी । कहीं लड़का देख आइये और विवाहमें व्यय भी तो होगा !'

'कल बाबासे कहूँगा ।' पण्डितजीने अपना निश्चित उत्तर दिया । ऐसे एक नहीं, अनेक श्रद्धालु थे जो पण्डितजीकी कन्याका विवाह अपने व्ययसे करा देनेमें अपना सौभाग्य मानते; किंतु पण्डितजी जब यह होने दें । यह दान तो ऐसा नहीं था कि उनकी ब्राह्मणीके चुपचाप ले लेनेसे काम चल जाय ।

'बाबा ! कन्या बड़ी हो रही है । उसका विवाह करना है । मैं वर ढूँढ़ूँ या कथा सुनाऊँ ?' दूसरे दिन पण्डितजीने अपने उस औढरदानी यजमानके सामने प्रार्थना की ।

'पण्डितजी ! मैं आपसे याचना करने आया हूँ ।' मध्याह्नमें पण्डितजी घर लौटे तो उनके यहाँ एक सम्मानित वृद्ध ब्राह्मण अतिथिके रूपमें मिले । वे आसपासमें सबसे सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित ब्राह्मण कह रहे थे—'यह मेरा पुत्र है । इसे साथ लाया हूँ । आप यदि इसमें कोई दोष न देखते हों तो मुझे आपकी पुत्री चाहिये पुत्र-वधू बनानेके लिये ।'

विवाह हुआ और खूब धूम-धामसे हुआ । नगरके लोगोंने तनसे सेवा की और धनसे सेवा करनेमें भी कोई कृपणता नहीं की; किंतु किसीकी समझमें नहीं आया कि वह व्यय कैसे पूरा होता गया जो स्वयं पण्डित रामप्रकाशजी करते गये । वे तो इस प्रकार लुटा रहे थे जैसे कुबेरका कोष उनकी झोंपड़ीमें ही रहता हो ।

तामस त्याग

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥
(गीता १८ । ७)

लंबा, दुबला, तनिक साँवला शरीर, गोल मुख, कुछ भीतर गड्ढेमें धँसे मटमैले छोटे नेत्र । वे खादी पहिनते हैं; किंतु वह दूध-सी उजली कभी नहीं रहती । अपने हाथ साबुन लगानेसे जितनी सफेद हो जाय और साबुन भी चौथे-पाँचवें ही तो मिल पाता है । अवस्था कितनी है, मुझे पता नहीं; किंतु सिर, दाढ़ी और मूँछोंके अधिकांश केश श्वेत हो चुके हैं । विद्वान् हैं—हिंदी,

संस्कृत और अंग्रेजी तीन भाषाएँ जानते हैं। मैंने कभी नहीं पूछा कि कोई चौथी भाषा भी जानते हैं या नहीं। केवल खादी ही नहीं पहिनते, स्वाधीनता-संग्राममें भाग लेकर कारागारकी चहारदीवारीके भीतर भी रह आये हैं।

उनपर रोष आना कठिन है। उन्हें देखकर दया आती है; किंतु उनसे दूर-दूर रहना ही अच्छा है। पता नहीं किस बातपर वे रुष्ट हो जायँ। जहाँ जायँगे—'यहाँ यह होना चाहिये! तुमलोग यह क्यों नहीं करते? यह असावधानी, यह बेईमानी....' पता नहीं दर्जनों दोष उन्हें एकदम एक साथ दीख कैसे जाते हैं। दोष कहाँ नहीं होते, किसमें नहीं होते? हमारी असावधानी, अपूर्णता और परिस्थितिजन्य विवशता—किंतु वे कुछ सुनना नहीं चाहते।

'मैं यह सब क्षमा नहीं कर सकता। समाचारपत्रोंमें लिखूँगा। अधिकारियोंको सूचित करूँगा। किसीने न सुना तो मेरे व्याख्यान जनताको बौखला देंगे। तुमलोगोंको मैं निकलवाकर छोड़ूँगा।' भय और चिन्ताकी कोई बात नहीं, वे इनमेंसे कुछ करनेवाले नहीं। वे यह कुछ कर नहीं सकते, यह मैं नहीं कह रहा हूँ। करनेकी योग्यता और शक्ति उनमें है; किंतु तत्परता नहीं है। आप निश्चिन्त रह सकते हैं। किंतु बोलना उनका स्वभाव है, उसे रोका नहीं जा सकता।

जहाँ रहेंगे—रहनेकी बात तो दूर, जहाँ घंटे-दो-घंटेको पहुँच जायँगे, सबको क्षुब्ध कर देंगे। कोई व्यक्ति हल्ला मचाकर किसीकी त्रुटियोंका वर्णन आसपास प्रारम्भ कर दे, एक बार वातावरणको

प्रतिकूल तो बना ही देता हैं। आप अपनी ऐसी आलोचना पसंद करेंगे ?

'यहाँ यह होना चाहिये । यहाँ ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये ! यह बात एकदम नहीं होनी चाहिये । यह काम यहाँ न होकर वहाँ होना चाहिये । यह आदमी इस कार्यसे अविलम्ब हटा दिया जाना चाहिये ।' आप पूछेंगे, इसकी अपेक्षा उन्हें नहीं । वे अपने सुझाव देंगे ही और इतने उच्च स्वरमें देंगे कि आपके साथ दस आदमी और सुन लेंगे । उनके सुझावोंको चरितार्थ करनेकी क्षमता तो कदाचित् ही किसीमें निकले ।

बड़े त्यागी हैं वे । कोई संग्रह नहीं उनके पास । शरीरपर पूरे वस्त्रतक नहीं । एकाध पुस्तक कदाचित् कभी रख लेते हैं, कितने दिन रहेगी । पैसा है नहीं । मिल जाय तो रह नहीं पाता । अमुक वस्तु प्राप्त ही हो जाय, ऐसा भी कोई आग्रह नहीं दीखा उनमें । किसीपर लगातार कई दिन रुष्ट रहते हों सो भी नहीं । उनका क्रोध क्षणोंका भले न होता हो, बद्धमूल भी नहीं होता ।

निद्रा उन्हें आती नहीं । क्यों नहीं आती, कह पाना मेरे लिये कठिन है । यद्यपि मैं साधारण चिकित्सक हूँ—मैंने चेष्टा की और एकाध दिन निद्रा उन्हें आ भी गयी; किंतु वे तो इस तमोगुणको स्वीकार ही नहीं करना चाहते । निद्राको समयका दुरुपयोग मानते हैं ।

कोई साधुवेश उन्होंने स्वीकार नहीं किया है । गृहस्थ उन्हें आप कह नहीं सकते; क्योंकि गृहका त्याग कर दिया है उन्होंने ।

पत्नीकी मृत्युके पश्चात् घर उन्हें रहनेके उपयुक्त नहीं जान पड़ा। अब दस-पाँच दिन या महीने दो महीने एक स्थानमें, फिर दूसरे स्थानोंमें—घूमते ही अवस्था व्यतीत हो रही है। अच्छा ही है यह उनके लिये। वे कहीं जमकर रहने लगें, उस स्थानके दूसरे लोगोंको निश्चय बाध्य कर देंगे कि वे घर-द्वार छोड़कर भाग खड़े हों।

सुना है, पढ़ा भी है कि त्यागसे शान्ति प्राप्त होती है। राग अशान्तिका हेतु है, यह निर्विवाद तथ्य है। जब हेतु नहीं रहा, अशान्ति क्यों रहनी चाहिये ? किंतु सच मानिये, इतना अशान्त मनुष्य मैंने नहीं देखा। स्वयं रात-दिन अशान्त और जहाँ रहे, दूसरे आस-पासके लोगोंकी शान्तिको फटकारकर दूर भगा देनेवाला।

निरन्तर व्यग्र, निरन्तर दुखी व्यक्ति आपने नहीं देखा होगा। उनके मुखपर भी कभी-कभी प्रसन्नता दीखती है; किंतु बहुत कम। उनके क्रोधसे भी भयंकर है उनका रुदन। वे किस बातपर क्रोध करेंगे और किसपर फूट-फूटकर रोते हुए अपने भाग्यको, अपनी असमर्थताको कोसने लगेंगे, कहना कठिन है। मुझे उनपर दया आती है; किंतु मैं उनसे दूर-दूर रहना ही पसंद करता हूँ।

× × × ×

'आपने घर छोड़ा तो कोई आपपर आश्रित नहीं था ?' एक दिन मैंने उनसे पूछा। प्रायः आ बैठते हैं और इनकी-उनकी इतनी त्रुटियाँ, इतने अपराध-विवरण उनके समीप सदा रहते हैं कि आप रात्रि-जागरण पसंद कर लें तो भी उनकी सामग्री समाप्त नहीं

होगी। मैं अल्पप्राण मनुष्य हूँ। बहुत थोड़ा धैर्य, बहुत कम सुनते रहनेकी शक्ति मुझमें है। उन्हें रोकने-टोकनेका अर्थ है उनके रोष या रुदनको आमन्त्रण देना। इसलिये मैं अपनी ओरसे कोई चर्चा चलानेका प्रयत्न करता हूँ और यदि इसमें असफल हो गया, नेत्र बंद करके बिना निद्राके सो जानेका अभिनय एकमात्र मेरा सहारा है।

'छोटे दो बच्चे थे।' उन्होंने इतनी तटस्थतासे उत्तर दिया, मानो वे बच्चे उनके नहीं, किसी मनुष्यके भी नहीं, बकरी या मुर्गीके उपेक्षणीय शिशु थे।

'उनका पालन-शिक्षण............ ।'

'आप इन व्यर्थ बातोंकी चिन्ता क्यों करते हैं!' मुझे बीचमें ही उन्होंने रोक दिया—'सब अपना-अपना प्रारब्ध लेकर आते हैं। अपने भाग्यका भोग उन्हें भोगना चाहिये। उनके लिये गृहमें बँधे रहनेको तो मनुष्यका जन्म नहीं मिला है।'

'मनुष्यका जन्म किसलिये मिला है।' यह प्रश्न करनेका साहस मुझमें नहीं था! जानता था कि इसके उत्तरमें वे जो प्रवचन प्रारम्भ करेंगे, वह कई घंटे अविराम चलता रहेगा। वे ऐसे वक्ता नहीं जो बोलते-बोलते थक जाते हैं। सामान्य वक्तृत्वकी बात तो दूर, किसीको कोसनेमें भी उन्हें बीचमें पानी नहीं पीना पड़ता।

'मनुष्य-जन्म किस प्रकार सफल कर रहे हैं।' मुझे पागल कुत्तेने नहीं काटा था कि मैं उनसे इस प्रकार पूछकर उनके

क्रोधका पात्र बनता। क्रोध यदि उस समय उनको न आता—कोई सौभाग्यकी बात नहीं होती। तब वे फूट-फूटकर क्रन्दन करने लगते और उनका रुदन मुझे उनके क्रोधसे अधिक कष्टदायी लगता है।

'आप नियमित संध्या करते हैं ?' जब भी वे मेरे पास आ बैठते हैं, उनकी अविराम वाग्धाराको अटकानेके लिये मुझे अपने मस्तिष्कपर दबाव डालना पड़ता है किंतु यह बात आपसे कह दी, उनसे मत कहिये। वे निजी प्रश्नोंसे कतराते हैं। जिन प्रश्नोंके उत्तरमें उनके पिछले जीवनका विवरण हो, उनके कर्तव्याकर्तव्यकी पूछताछ हो, उन प्रश्नोंका उत्तर वे दो शब्दोंमें देना चाहते हैं। जब देखते हैं कि आज उनसे ऐसे ही प्रश्न पूछे जायँगे, उन्हें कोई अत्यावश्यक कार्य स्मरण आ जाता है। आप समझ गये होंगे कि मैं उनसे प्रायः कैसी बातें पूछता होऊँगा।

'मैं इन कर्मकाण्डोंको महत्त्व नहीं देता।' उनके स्वरमें ऊबनेका भाव स्पष्ट था। वे ब्राह्मण हैं, पर बड़ी-सी चुटिया रखते नहीं; शिखाशून्य भी आप उन्हें नहीं कह सकते। सिरके केश छोटे रखते हैं अतः शिखाके स्थानपर जो दस-पाँच कुछ बड़े बाल हैं, वे उन्हें हिंदू बताते हैं। वैसे जनेऊ खादीके सूतका खूब मोटा पहिनते हैं वे।

'मैंने एक आदमीको अभी मिलनेका वचन दिया है।' वे उठ खड़े हुए। मुझे तो इसकी आशा ही थी। मैं उनसे निजी प्रश्न न करूँ, उनको कभी अपना किसीको दिया वचन स्मरण नहीं आ सकता।

× × × ×

'तुम दूसरोंके दोष देखनेमें जितना समय देते हो, उतना यदि भजन करनेमें लगाओ !' उस दिन मैं एक वीतराग महात्माके पास गया था। देखा, वे वहाँ बैठे लोगोंमें सबसे आगे बैठे हैं। महात्मा उनको समझा रहे हैं—'तुम्हें भी शान्ति मिले और दूसरोंको भी तुमसे उद्वेग न हो।'

'मैं दूसरोंके दोष देखता हूँ और आप सबके गुण-ही-गुण देखते हैं! मुझमें कोई गुण नहीं दीखता आपको।' वे बिगड़ उठे। 'लोग मनमानी करते रहें, पर किसीको बोलना नहीं चाहिये। जनताके पैसे और सार्वजनिक स्थानोंका जो दुरुपयोग लोग कर रहे हैं, मैं उसे चलने नहीं दे सकता। जनता-जनार्दनकी सेवा भगवान्‌का भजन नहीं है, यह कहनेवाला शास्त्रोंका तात्पर्य तनिक भी नहीं समझता।'

वे खड़े हो गये आवेशके मारे और बोलते रहे। वहाँ बैठे लोगोंमेंसे एक समझदार सज्जन उठे। बड़ी नम्रतापूर्वक वे उन्हें साथ लेकर चले गये एक ओर। सबका समय नष्ट न हो, सबके सत्संगमें बाधा न पड़े, इसलिये उन्होंने अपने सत्संगका समय उनको पृथक् ले जानेमें लगाया।

'त्यागसे शान्ति मिलनी चाहिये।' मुझे जब अवसर मिला, मैंने महात्माजीसे पूछा। 'इनमें न संग्रहकी प्रवृत्ति है, न वस्तुओंका मोह दीखता है। किंतु इतना अशान्त पुरुष················।'

'नारायण, त्याग सात्त्विक हो तो उससे निश्चय शान्ति प्राप्त होती है।' महात्माने मुझे बताया। 'परंतु राजस त्याग शान्ति

नहीं देता। वह तो निष्फल ही जाता है। त्याग राजस न होकर यदि तामस हो जाय तो अशान्तिका उद्भव बन जाता है।'

'त्यागसे अशान्ति उत्पन्न होती है?' मैंने आश्चर्यके साथ पूछा। आपको भी यह बात सरलतासे गले उतरती नहीं जान पड़ेगी।

'नारायण, तुम यदि स्नानका त्याग कर दो अथवा अपने वस्त्रोंको स्वच्छ करनेका प्रयत्न त्याग दो, महात्माने स्नेहभरे स्वरमें समझाया—'क्या होगा, जानते हो?'

'वस्त्र मैले हो जायँगे, देह मैलसे ढक जायगा।' मुझे स्वीकार करना पड़ा। 'दुर्गन्धि आयेगी और रोग आ सकता है।'

'इस त्यागने तुमको और तुम्हारे समीपस्थोंको क्या दिया—शान्ति या अशान्ति?' महात्माका प्रश्न सीधा था। उत्तर बिना दिये ही दे दिया गया मुझे।

'नियत कर्तव्यका त्याग किसी अवस्थामें उचित नहीं है। अज्ञान या कुतर्कवश कोई इसका त्याग कर ही दे' साधु कह रहे थे—'इस तामस त्यागसे उसके मनका मल बढ़ता जायगा। कर्तव्यका पालन तो चित्तकी नित्य स्वच्छताका हेतु है। वह स्वच्छता अवरुद्ध हुई, मल एकत्र होने लगा। जहाँ मल होगा, वहाँ दुर्गन्धि और रोग होंगे। स्वयं तथा दूसरोंको भी अशान्ति तथा कष्टके अतिरिक्त और क्या मिलेंगे, ऐसी स्थितिमें।'

वे त्यागी हैं—बेचारे ·······किंतु उन्हें समझानेका साहस मुझमें नहीं है। आपमेंसे यदि कोई साहस कर सकते हों···········।

राजस त्याग

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥
(गीता १८ । ८)

'बम् शंकर, काँटा गड़े न कंकर !' दोनों हाथोंमें एक विशेष मुद्रापूर्वक चिलम पकड़कर मुखसे लगा ली गयी । पूरी शक्तिसे खींचनेका फल हुआ कि चिलमके ऊपर छः अंगुल ऊँची लौ उठी । मुख और नाकसे धुआँ उड़ाते उन्होंने चिलम दूसरेकी ओर बढ़ा दी ।

पाँच जटाधारी बैठे थे । प्रायः सभी कृशकाय, लाल-लाल नेत्रवाले । कम्बल लपेटकर लंगोटीसे बाँध लिया गया था और इस समय कंधेमें लटकानेके बदले उसे उन्होंने अपने पास भूमिपर रख लिया था । तीनके पास बड़े-बड़े चमकीले लोटे थे और दोने खूब बड़े तुंबे समीप रख छोड़े थे । चिनटे थे, कुल्हाड़ी थी और एकके पास परशु भी था ।

सभी भस्मधारी थे । यों इस समय शरीरपरसे भस्म छूट चुकी थी और अब उसका चिह्न ही लक्षित हो सकता था । मस्तकपर,

भुजाओंपर, वक्षपर, उदरपर भी रामानन्दी तिलक लगा था। कौपीन और अचला—भस्मधारीके वस्त्र उज्ज्वल होनेकी आशा की नहीं जानी चाहिये।

बड़ी-बड़ी पूरे गट्ठर-जैसी जटा थीं दोके सिरपर और सभीके गलेमें तुलसीकी माला थी। किंतु एकके गलेकी माला दर्शनीय थी। इतने बड़े-बड़े, लंबे तुलसीके दाने जिनमें छोटी सींगों-जैसी शाखाएँ भी रक्खी गयी थीं; साधुओंके समाजमें भी कम ही देखनेमें आया करते हैं। एक साधुके गलेमें चौकोर ताबीजों-जैसे तुलसीके दानोंकी माला थी। उन दानोंपर 'सीताराम' खोदा गया था।

मैं गङ्गास्नान करने गया था। घाटके ऊपर ही मार्गसे तनिक हटकर एक बरगदका वृक्ष है। कभी उस वृक्षके नीचे एक फूसकी झोपड़ी थी। उसमें एक साधु रहा करते थे। एकान्तसेवी, भजनानन्दी साधु थे वे। उन्होंने बरगदके नीचे कच्चा चबूतरा बना रक्खा था। समीप ही कुछ फूल-तुलसीके पौधे लगा रक्खे थे। कभी-कभी मैं उनके समीप थोड़ी देरको जा बैठता था। गङ्गाकी बाढ़ आयी और झोपड़ीको जल छूने लगा तो वे कहीं आसन बाँधकर चले गये। अब वहाँ महीनोंसे झोपड़ी नहीं है। दो-चार तुलसी और दो कुन्दके पौधे अभी हरे हैं। आज स्नान करके घाटपर ऊपर आया तो वृक्षके नीचे साधुओंको देखकर दृष्टि उधर उठ गयी। देखने लगा कि कहीं वे भी तो इस समूहमें नहीं हैं?

'भगत! इधर आ।' एक साधुने पुकारा। मैं अपने मार्गसे जानेको मुड़ चुका था। दम लगानेवालोंमें भी अच्छे संत हो सकते

हैं, किंतु मेरे मनमें अरुचि है इस वर्गके प्रति । जिसने सत्याग्रह-आन्दोलनमें गाँजे-भाँगकी दूकानपर महीनों धरना दिया हो और इस वर्गकी गालियाँ खायी हों, वहींसे जेल गया हो, उसके मनमें यदि दम लगानेवालेके प्रति अरुचि स्थिर बैठ गयी हो तो आपको यह दुर्बलता क्षमा कर देनी चाहिये ।

'क्या बात है ?' मैं कुछ दूर ही जाकर खड़ा रहा उन लोगोंसे । केवल हाथ जोड़कर सामान्य नमस्कार किया गया । मुझे उस साधुका पुकारना बुरा ही लगा था ।

'आ बैठ तो !' उसी साधुने कहा । 'संतोंके समीप बैठनेसे कल्याण ही होता है ।'

'आपकी कृपाके लिये धन्यवाद !' रूखे स्वरमें मैंने कहा । 'मेरे पास अवकाश नहीं है और मैं किसी प्रकारकी कोई सेवा आपलोगोंकी कर नहीं सकूँगा ।'

'सुनिये तो !' मैं मुड़ा ही था कि एक दूसरा स्वर सुनायी पड़ा । कुछ पहिचाना लगा यह स्वर और उसमें जो शिष्टता थी, वह मुझे अच्छी लगी । मैं समीप चला गया उन लोगोंके । वैसे मुझे तंबाकूके धुएँसे कष्ट होता है, जी घुटता-सा लगता है । इसलिये भी मैं उन लोगोंके समीप नहीं जाना चाहता था ।

'आपने मुझे पहिचाना नहीं लगता ।' एक साधु उनमेंसे उठ खड़े हुए । अबतक मैंने उनके मुखकी ओर ध्यानसे देखा नहीं था । किंतु देखकर भी मैं उन्हें पहिचान नहीं सका । उन्होंने मेरी स्मृति-को सहायता दी—'अवधराम तिवारीको आप भूल ही गये ।'

'अवधरामजी !' मैं चौंका, किंतु न पहिचाननेका कारण तो था ही—'क्षमा करें, यह भारी जटा और यह लंबी घनी दाढ़ी मेरे अनुमानमें भी नहीं थी।'

'अब दासको लोग अवधदास कहते हैं।' उन्होंने देख लिया कि मैं अब भी वहाँ बैठनेको उद्यत नहीं हूँ। 'आपसे मिलनेकी इच्छा बहुत दिनोंसे थी; किंतु इस समय तो आप शीघ्रतामें जान पड़ते हैं।'

'मुझे अभी अपना नित्यका स्नानोत्तर कर्म सम्पन्न करना है।' मैंने भी संकोच नहीं किया। 'आप यदि मध्याह्नके बाद पधारें घरपर; किंतु अकेले आइये।'

'हम सब मन्दिरपर आसन रक्खेंगे।' उन्होंने स्वीकार कर लिया। 'मैं अकेले ही आऊँगा।'

मैं प्रणाम करके लौटा तो अवधदासजीसे उनके साथी मेरा परिचय पूछ रहे थे।

× × ×

श्रीअवधरामजी मेरे परिचित लोगोंमें हैं। ऐसे युवकोंमें जो कुछ समय मेरे साथ रहे हैं। सबसे पहिले मैंने उन्हें अपने शिविरमें पाया सत्याग्रह-आन्दोलनके दिनोंमें। वे स्वयं ही आये थे स्वयंसेवकोंमें भर्ती होने। किंतु वहाँ वे टिक नहीं सके। उन्हें और तो कोई कठिनाई नहीं हुई थी; किंतु भोजन बनाने, वर्तन मलने, स्थानकी स्वच्छतामें वे योग नहीं दे पाते थे। जहाँ सब एक स्तरके, एक बराबरके हों, वहाँ एकको श्रमके कार्योंसे छुट्टी कैसे दी जा सकती

थी ? उनकी दूसरे लोगोंसे पटी नहीं। वे चले गये एक दिन बिना किसीको सूचना दिये।

अच्छा खाता-पीता कृषकका घर; किंतु घरपर भी अवधरामकी किसीसे पटती नहीं। वे दिनभर पड़े-पड़े रामायण, सुखसागर अथवा उपन्यास पढ़ा करें, यह उनके परिश्रमी भाइयोंसे नहीं देखा जाता। पाठशालाको उन्होंने पहिले ही नमस्कार कर लिया है। अब किसानके घरका लड़का खेत-खलिहान नहीं देखेगा तो उसे भाई-भाभियोंकी खरी-खोटी सुननी तो पड़ेगी ही।

कांग्रेस-आन्दोलनमें अवधरामजीका सम्मिलित होना उनके भाइयोंको अच्छा नहीं लगा था। केवल इसलिये अच्छा नहीं लगा था कि वे अपने घरके समीपके ही शिविरमें थे। यहाँसे पकड़े जाने-पर पुलिसको उनका नाम-पता ढूँढ़ना नहीं पड़ता। घरके लोग यह कैसे पसंद कर सकते थे कि अवधरामपर हुए अर्थदण्डको प्राप्त करनेके लिये पुलिस घरके गाय-बैल नीलाम करे। हो यही रहा था उन दिनों कि जिसका भी पता लग जाता, उसपर न्यायालय कसके अर्थदण्ड करता और पुलिस उसके घर जो कुछ मिल जाता, वही उठा ले जाती। स्वयं मेरे घरके किवाड़ अर्थदण्ड प्राप्त करनेके लिये पुलिसके लोग द्वारमेंसे निकाल ले गये थे।

हमारे शिविरसे सूर्योदयसे पहिले ही उस दिन अवधराम चले गये थे। पीछे पता लगा कि वे घर गये हैं। उन दिनों सत्याग्रह-आन्दोलन पूरे वेगमें था और अंग्रेज सरकारका दमन भी अपनी सीमापर था। मुझे समय कहाँ था कि किसीके समाचार रखता।

मैं कारागारमें छः महीने रहकर बाहर आया। थोड़े ही दिनोंमें सामूहिक सत्याग्रह-आन्दोलन महात्माजीने स्थगित कर दिया। व्यक्तिगत सत्याग्रह अन्ततः व्यक्तिगत ही तो रहता। उसमें वैसी व्यापकता नहीं थी।

स्थिति शान्त हुई तो किसी विशेष चर्चाके मध्य पता लगा कि अवधराम घरसे चले गये हैं। वे सचमुच अवध-आराम बन गये हैं। अयोध्या जाकर उन्होंने किसी बाबाजीसे दीक्षा ले ली है। समयके पग तो रुकते नहीं। बात आयी-गयी हो गयी। कई वर्ष व्यतीत हो गये। सम्भवतः अब भाइयोंको भी स्मरण नहीं होगा कि उनके अनुजका क्या हाल है।

इतने दिनोंके बाद आज अकस्मात् अवधरामजी इस वेशमें मिलेंगे, यह कल्पना भी मनमें कैसे आती। मैं घर लौट आया; किंतु मनमें कई बातें उठती रहीं। इतने दुबले हो गये अवधराम—भूल रहा हूँ, अब मुझे अवधदास कहना चाहिये। ब्राह्मणके बालक इधर चिलम छूना भी पसंद नहीं करते और यह गाँजेकी दम! संगका प्रभाव क्या नहीं कर सकता।

सब बात तो ठीक; किंतु मनुष्यके केश इन कुछ वर्षोंमें इतने बढ़ जाते हैं कि उनसे बनी जटा खुली होनेपर डेढ़-दो हाथ पृथ्वीमें खड़े होनेपर घसीटती चले और बाँधनेपर मस्तकपर बड़ा-सा गट्ठर बन जाय, यह बात समझमें नहीं आती थी।

× × ×

'आइये!' मैं भोजन करके लेटता हूँ। लेटे-लेटे ही कुछ

पढ़ता हूँ। आज भी यही क्रम चल रहा था। अवधदासजीको आते देखकर मैं उठ खड़ा हुआ। 'आप चारपाईपर तो बैठेंगे नहीं।'

'आप लेटिये ! मैं कुर्सीपर बैठता हूँ।' वे कुर्सी समीप खींच-कर बैठ गये तो मैं भी चारपाईपर बैठ गया।

'आपके साथी सम्भवतः मन्दिरमें ही होंगे ?' मैंने शिष्टाचार-वश ही पूछा।

'अभी तो मन्दिरमें ही हैं, पर शामको आगे चले जायँगे !' मुझे उन्होंने बताया। 'मैं काशीसे चला तो दो संत साथ हो गये। मार्गमें दो और मिल गये। अब वे लोग श्रीजगन्नाथजी जायँगे।'

'आपलोग पैदल ही यात्रा करते हैं ?'

'नहीं तो !' वे निःसंकोच बोले। 'रेल तो रामजीकी है; किंतु काशीमें हमलोगोंको एक टी-टीने उतार दिया था। इधर दम लगानेका सामान भी समाप्त हो रहा था, सबने सोचा कि कुछ दूरतक गाँवोंमें घूमते चला जाय।'

'अयोध्या आपने क्यों छोड़ा ?'

'चार-छः दिन तो वहाँ ठीक व्यवस्था रही, उसके बाद गुरुजीने भंडारकी सेवा दे दी।' वे बोले—'मुझे गोबर उठाना होता, चारा काटना होता तो घर ही न रहता। साधु हुआ था भजन करनेको कि खाद ढोने, हंडे-कड़ाहे मलने और झाड़ू लगानेको। मैंने फिर भस्म धारण कर लिया, इससे भंडारमें चूल्हा फूँकनेसे छुट्टी मिल गयी; किंतु बर्तन, गोबर और जाने क्या-क्या बखेड़ा आ गया। इसलिये मैंने स्थान छोड़ दिया। कुछ दिन

जमातके साथ रहा; किंतु वहाँ भी यही खटपट, अतः अब अपने रमते राम हैं।'

'चलिये, अब सब बखेड़े छूट गये। अब तो भजन-ही-भजन है।' मैंने सहजभावसे कह दिया।

'भजन ही तो नहीं बनता।' अब वे कुछ खिन्न स्वरमें बोले। 'गप्पें लड़ाना, यहाँ-वहाँ घूमना, बस होता यह है। किसी-न-किसीके साथ हो लेता हूँ, अतः टिक्कर सेंकने नहीं पड़ते। किंतु भजन बननेका कोई मार्ग नहीं दीखता। आपकी स्मृति आयी अनेक बार। सोचा कि आपसे मिलकर सब बातें कहूँगा। दूसरे किसीसे कुछ कहने-पूछनेमें तो यह वेशका संकोच बड़ी बाधा है।'

'मैं एक स्थान जानता हूँ। आप चाहें तो पत्र दे दूँगा।' मैंने सीधे प्रस्ताव किया। 'नियमित रूपसे छः घण्टे प्रतिदिन रामायणका पाठ करना पड़ेगा। रहनेको कुटिया और सादा-रूखा भोजन आपको वहाँ मिल जायगा। जबतक चाहें, वहाँ रहें।'

'छः घण्टे नियममें बँधकर पाठ करना अपने वशका नहीं।' वे बोले। 'जब सब कुछ त्याग दिया तो पेटके लिये नौकरी कौन करे।'

'सब कुछ त्याग दिया····'उनके चले जानेपर मैं सोचता रहा, इस त्यागका क्या अर्थ। यह त्याग हुआ भी या नहीं और यदि त्याग हो—भजन क्यों नहीं बनना चाहिये। किंतु शरीरको कष्ट मिलेगा, इस भयसे किया गया त्याग राजस त्याग है—निष्फल है वह।

सात्त्विक त्याग

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥
(गीता १८।९)

'कुमार! आखेट एक व्यसन है—दुर्निवार व्यसन!' जब कमरपर त्रोण कसकर, हाथमें धनुष लेकर परिकरोंके साथ राजकुमार-ने अरण्यकी ओर प्रस्थानसे पूर्व अपने अस्त्रगुरुके चरणोंमें मस्तक झुकाया, वे रजतकेश महाधनुर्धर बोले—'व्यसन सदा त्याज्य है; क्योंकि वह पतनका हेतु होता है। साथ ही कर्तव्यसे पराङ्मुख होना कापुरुषता है।'

'श्रीचरणोंके आदेश मुझे प्रकाश प्रदान करेंगे।' युवक राजकुमारने अनुमति प्राप्त की और दो क्षण बीतते-न-बीतते उनका अश्व अपने सब अनुगतोंको पीछे छोड़ चुका था। आखेट-सहायकदल प्रयत्न कर रहा था कि वह साथ ही रहे और आखेट-निर्देशकने तो अन्तमें राजकुमारको पुकार ही लिया। प्रथम आखेटके समय अनुभवहीन युवकको एकाकी वनमें कैसे जाने दिया जा सकता है?'

'इधर दो वर्षसे श्रीमान् नहीं पधारे हैं!' अभी कल एक वन्य-जनपदके प्रतिनिधिने आकर नरेशसे प्रार्थना की। 'हमारे खेतोंके लुटेरे वनपशु, सम्भव है, हमें भूखों मरनेके लिये विवश कर दें। इधर हमारे गृह-पशुओंको पशुशालाकी परिखा कूदकर वे उठा ले

जाते हैं और पिछले तीन महीनेसे एक शेर मानव-भक्षी हो गया है। उसने अकेले पड़नेवाले घसियारोंको तो मारा ही था, कल ग्रामके पाससे वह एक किशोरको उठा ले गया।'

नरेशने समाचार सुना और उनके नेत्र भर आये। वे वृद्ध हो गये हैं। रोगने उन्हें जर्जर कर दिया है। पूरे वर्षभरसे अश्वकी पीठका स्पर्श नहीं कर सके वे। सेनापति जायँगे; किंतु पुत्रके समान प्रजाकी रक्षाका भार सेनापतिपर छोड़कर क्या निश्चिन्त रहा जा सकता है? आज यदि उनका शरीर थोड़ा भी साथ दे पाता····।

'राजकुमार कल आपके जनपदकी ओर प्रस्थान करेंगे?' राज्यके अस्त्र-शिक्षकने जो घोषणा की, उसने महाराजको, राजसभाको ही नहीं, स्वयं राजकुमारको भी चकित कर दिया। 'जबतक वन्यपशुओंका उपद्रव शान्त न हो जाय, उनका आखेट-शिविर आपके जनपदके समीप रहेगा; किंतु वे पूरा ध्यान रक्खेंगे कि उनके शिविरके कारण आपलोगोंको कोई असुविधा न हो।'

'वे हमारे स्वामी'—वन्य प्रतिनिधि उठ खड़ा हुआ। 'उनसे हमें असुविधा क्या होगी। हमारे भाग्य ऐसे नहीं कि हम उनका स्वागत कर सकें। इतनी ही उनकी क्या कम कृपा है कि वे हमारे जनपदकी ओर पधारेंगे!'

'राजकुमार आखेट करने जायँगे?' आशंका नरेशको थी, ऐसा ही नहीं—प्रत्येकका चित्त सशङ्क था।

'हिंसाका यह घोर कर्म मुझे करना पड़ेगा?' राजसभासे

उठते ही राजकुमार अपने अस्त्रशिक्षकके सम्मुख उपस्थित हुए। बहुत सम्मान करते हैं राजकुमार इन वृद्ध महाधनुर्धरका। किंतु ऐसा आदेश पानेकी आशा उन्हें नहीं थी।

'तुम न जाओ तो मुझे जाना होगा और मैं समझ लूँगा कि जीवनमें प्रथम बार एक अनधिकारीको शिक्षा देनेकी भूल मैंने की।' अस्त्रशिक्षकने राजकुमारके मुखपर नेत्र स्थिर कर दिये। 'जो आपत्तिग्रस्त जनोंको अभय देने आगे न बढ़ सके, धिक्कार है उसके क्षत्रिय होनेको। अस्त्र-शिक्षाका और उपयोग भी क्या होगा। कर्म अपने आपमें कहाँ शुभ या अशुभ है। यों तो तुम श्वास लेते हो, तब भी सहस्रों जीव मरते हैं।'

'मैं अवज्ञा करनेकी धृष्टता नहीं कर सकता।' राजकुमारने मस्तक झुका दिया। 'आखेटके औचित्यकी बात—हिंसा मुझे ही नहीं, श्रीचरणोंको भी अत्यन्त अप्रिय है!'

'वत्स! तुम जानते ही हो कि इस वृद्धने अहिंसाका व्रत ले लिया है, किंतु तुम प्रस्तुत न हो तो मेरा धनुष अब भी वनमें मृत्यु-वर्षा करनेमें समर्थ है।' स्नेहपूर्ण स्वर—'यह हिंसा हो भी तो उसका फल हम भोग लेंगे। जो अपने जीवन तथा आजीविका-की रक्षाके लिये तुम्हारी ओर देखते हैं, उन्हें अभय देनेके लिये ही तुम्हारे हाथमें धनुष है। तुम्हारा कर्तव्य तुम्हें वनमें पुकार रहा है।'

'मैं प्रातः प्रस्थान करूँगा।' राजकुमारने सादर आदेश स्वीकार कर लिया। उनके आखेटके लिये शेष बातोंकी व्यवस्था स्वयं महाधनुर्धरने अपने हाथमें ली। प्रातः सूर्योदयके कुछ काल

पीछे ही वन्य प्रतिनिधिके साथ राजकुमारका पूरा दल प्रस्थान कर चुका था ।

× × ×

'ठहरो !' वज्रकठोर स्वर । आखेट-प्रमुखके कर धनुषकी प्रत्यञ्चापर जैसे स्तम्भित हो गये । बलाबलपूर्वक खींचनेसे अश्व लगभग दो पैरोंपर खड़ा हो गया । पीछे मुड़कर देखनेकी आवश्यकता नहीं हुई । पूरे वेगमें राजकुमारका अश्व आया और ठीक सम्मुख खड़ा हो गया—'एक शिशुवती माताकी हत्या आप नहीं कर सकते ।'

'आखेटके कुछ नियम होते हैं कुमार !' आखेट-प्रमुखने अपने अश्वको सँभाला और धनुषसे बाण उतार लिया । 'आप ठीक मेरे धनुषके सम्मुख आ खड़े हुए हैं और मनुष्य सदा सावधान नहीं रहता । सिंहनी विफर नहीं उठेगी—क्या आश्वासन !'

'मानवताके नियम आखेटके नियमोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं ।' राजकुमारके स्वरमें अब भी आवेश था । वे देख रहे थे कि आखेट-प्रमुखके नेत्र दूर लक्ष्यपर थे और उनके दक्षिण करका बाण अभी त्रोणमें नहीं गया था । 'मेरे प्राणोंकी अपेक्षा उस माताके जीवनका अधिक मूल्य है; जिसके ऊपर उसके तीन शिशु निर्भर करते हैं ।'

'हमने एक नर सिंह मार दिया है । वह मानवभक्षी था ।' आखेट-प्रमुखने अपने अनुभवका परिचय दिया । 'यदि वह इसी परिवारका हो, ये शिशु भी मानव-मांसका स्वाद पा चुके होंगे और कुछ महीनोंमें ही भयप्रद हो जायँगे ।'

'अपने अपूर्ण अनुमानके आधारपर हम हत्या करने तो आये नहीं हैं ।' राजकुमारने अब आगे देखा । सिंहनी इतनी देरमें अपने

शावकोंको लेकर गुफामें जा चुकी थी। 'हम यहाँ निरीक्षक रख दे सकते हैं। यदि यह परिवार मानव-भक्षी भी हो गया हो तब भी शिशुओंको और उनकी माताको मारा नहीं जा सकता। हम उन्हें अपनी जन्तुशालामें ले जायँगे।'

'कुमार! क्षमा करें।' आखेट-प्रमुखका स्वर गद्गद हो उठा। 'जीवनमें आज एक सच्चे आखेटकके दर्शन हुए मुझे। आखेट-शास्त्रमें पढ़ा मैंने भी यह सब है; किंतु वनमें इन बातोंका पालन भी किया जाता है, आज यह जीवित शिक्षा प्राप्त हुई। मैं आखेटका प्रमुख निर्देशक भले होऊँ, उसके आदर्शकी प्रेरणा मुझे आपसे लेनी चाहिये, यह समझ गया।'

'शूर हत्यारे नहीं हुआ करते!' राजकुमारने किंचित् संकोचका अनुभव किया। 'मुझे तो आपसे शिक्षा लेनी है। पिताने भी आपके संरक्षणमें मुझे भेजा है। मैं चाहता यही हूँ कि एक भी निरपराध पशु न मारा जाय। जहाँतक सम्भव हो, वन्य पशुओंको भयभीत करके हम जनपदसे दूर घने वनोंमें चले जानेको विवश कर दें। ऐसी व्यवस्था यहाँ कर जायँ कि वे शीघ्र इधर लौट न आवें।'

'अबतक मैंने यही सीखा था कि आखेटका सम्मान अधिकसे-अधिक पशुचर्म प्राप्त करने—विशेषतः दीर्घाकार व्याघ्र एवं सिंहोंके चर्म प्राप्त करनेमें है।' दोनों ही आखेटक अपने अश्वोंको मोड़ चुके थे। आखेट-प्रमुख अपनी बात कह रहे थे—'आज दूसरी बात कुमारने हमें दी।'

'सम्पूर्ण जीवन ही एक आखेट-क्रीड़ा है। यह मेरे शस्त्रगुरुने एक वार कहा था।' कुमार गम्भीर हो गये। 'हम हत्याका व्यसन पाल लेंगे आखेटमें तो जीवनमें भी उत्पीड़न एवं परस्व-हरणके पापसे वच नहीं सकेंगे। कर्तव्य है, इसलिये कर्म करना है। उसमें आसक्ति—आखेटमें आसक्ति व्यसन है, यह चेतावनी शस्त्रगुरुने चलते समय दी है मुझे।'

× × ×

'कुमार! कल तुमने मुझे मारा है।' विशाल-वपु केशरी खड़ा था सम्मुख; किंतु आज उसके नेत्रोंसे अङ्गार नहीं झड़ते थे और उसका भयानक मुख भी खुला नहीं था। उसकी दिगन्तकम्पी गर्जना तो कल ही सदाको सो चुकी। 'मैं तुम्हें कोई उपालम्भ नहीं देता। मैं आक्रमणकारी था, तुम मुझे मार न देते तो मैं तुम्हें अवश्य मार देता।'

आखेटसे श्रान्त राजकुमार अपने शिविरमें तृणशय्यापर सो रहे थे। प्रगाढ़ निद्रा आयी थी उन्हें; किंतु इस समय अव वे स्वप्न देख रहे थे। सदाकी भाँति आज रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें वे जाग्रत् नहीं हो सके। पता नहीं, कलकी श्रान्तिका परिणाम था यह, अथवा जो स्वप्न वे देख रहे थे, उसे विश्व-विधायकको अवकाश देना था।

'दोष मेरा भी नहीं है। मेरे आवासके समीप कोलाहल सुनकर मेरे शिशुओंकी जननी चिन्तित हो उठी थी।' केहरी कहता गया। 'मेरा शौर्य सहधर्मिणीको चिन्तित नहीं देख सकता था। धाताने स्वभावसे ही मेरी जातिको असहिष्णु बनाया है।'

शिविरके बाहर प्रहरी शान्त पदोंसे टहल रहा था। आखेट-प्रमुखने उसे आदेश दिया था कि राजकुमार यदि विलम्बसे भी उठें, तब भी उनको स्वतः उठने दिया जाय। आज उनकी निद्रामें व्याघात नहीं पड़ना चाहिये। कल काननमें वे अत्यधिक श्रान्त हो चुके हैं।

'तुम्हारे बाणोंने मुझे सद्गति दी। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। अत्यधिक कृतज्ञ इसलिये हूँ कि कल ही तुमने मेरी संतानोंकी रक्षा की। मेरी सिंहनीको तुमने आखेटकका लक्ष्य होनेसे बचाया।' राजकुमार स्वप्नमें भी आश्चर्य कर रहे थे कि इतना क्रूर प्राणी भी कितना कृतज्ञ हुआ करता है। सिंह आगे बोला—'मैं इस वेशमें केवल इसलिये आया हूँ कि तुम मुझे पहिचान सको। नियमनिष्ठ आखेटकके शस्त्रोंसे मृत-पशु पवित्र होकर स्वर्गमें स्थान प्राप्त करता है।'

'तुमने मुझे सद्गति दी और मेरे शिशुओंको बचाया। मैं इस समय समर्थ हूँ। मेरा प्रसाद व्यर्थ नहीं जाना चाहिये।' स्वप्नमें राजकुमारने देखा कि सिंह सहसा एक ज्योतिर्मय दिव्य-देहधारी मनुष्याकृतिमें परिवर्तित हो गया है। वह रत्नाभरणभूषित निश्चय कोई देवता है। अब वह देवता कह रहा था—'प्रातः निद्रात्यागके पश्चात् सोच लेना कि तुम्हें जीवनमें क्या चाहिये। अपनी नियमित अर्चाके उपरान्त आधे मुहूर्ततक तुम जो भी कामनाएँ करोगे, वे सब पूर्ण होंगी।'

'मैंने कोई सत्कार्य तो किया नहीं।' निद्रासे उठते ही राजकुमारके मनमें पहिली बात आयी। 'केहरी निरपराध था। उसके आवासके समीप हमलोग गये न होते, वह आक्रमण करने हमारे शिविरपर तो आ नहीं रहा था। मेरा अपराध उसके मनमें

नहीं आता—देवताका यह सहज औदार्य; किंतु मैंने आगे जो किया, वह मेरा कर्तव्य-मात्र था।'

राजकुमार देरसे उठे थे आज। नित्यकर्मोंसे निवृत्त होनेमें उन्हें देर होनी ही थी। आखेट-प्रमुखको कोई शीघ्रता नहीं थी। आज तो यहाँसे राजधानी प्रस्थान करना था। यहाँका कार्य तो समाप्त हो चुका। प्रस्थान कुछ देरसे भी हो तो वनमार्गकी छाया आतपका कष्ट नहीं होने देगी।

'पशु और मानव सब अपनी मर्यादामें रहें। सबका मङ्गल हो!' आप इसे कामना कह सकते हों तो अर्चा समाप्त करके यह कामना राजकुमारने अवश्य की थी। इसके पश्चात् वे पुनः ध्यान करनेमें लग गये थे। पूरा मुहूर्तभर अधिक लगाया उन्होंने उस दिन ध्यानमें।

'हम सब किसी सेवाके योग्य नहीं!' प्रस्थानको प्रस्तुत राजकुमारके सम्मुख वन्य जनपदके कुछ लोग उपस्थित हुए थे। वे अद्भुत ओषधियाँ, दुर्लभ वीरुध तथा अन्य उपहार ले आये थे—'यह घासफूस स्वीकृति पा जाय, हम अपनेको धन्य मानें।'

'आपके स्नेहने हमें धन्य किया।' राजकुमारने उपहार लौटाये नहीं; किंतु लानेवालोंको पुरस्कार स्वीकार करना पड़ा और वह अल्प नहीं था। 'हम तो यहाँ कर्तव्यका एक अंश पूर्ण कर सके, यही सबसे बड़ा उपहार।'

सुनते हैं, नगर लौटनेपर शस्त्रगुरुने अपने शिष्यको सच्चा त्यागी कहकर हृदयसे लगाया था।

'त्यागी स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मण देवताओंद्वारा भी वन्दनीय है। कोई उसके यहाँ आता है, उसे प्रणाम करता है तो उसपर कोई कृपा नहीं करता। वह कृपा करता भी है तो अपने आपपर करता है; क्योंकि उस तपस्वीके दर्शन एवं अभिवादनसे वह स्वयं पवित्र होता है। उसके अशुभ—अमङ्गल नष्ट होते हैं।' (इसी पुस्तकसे)